के बाद ऐसी चुनावी घोषणाएं पूरा करना संभव नहीं होता

या उन्हें आधा-अधूरा पूरा करके खानापूरी की जाती है.

अगले चुनाव में स्वाभाविक है कि यह 'वादाखिलाफी'

मुद्दा बनेगी. जनता नहीं तो विरोधी दल निश्चय ही पूछेंगे

कि अमुक वादों का क्या हुआ? सत्तारूढ़ दल इस अप्रिय

ही नहीं चाहिए, बल्कि कई और 'अप्रिय' स्थितियों एवं

मुद्दों को दबाने के लिए भी जरूरी लगती है. हमारे विविध

और विशाल देश में समय-समय पर अनेक चुनौतियां सिर

उठाती रहती हैं. भूख-गरीबी, बेरोजगारी, खेती-किसानी,

शिक्षा, स्वास्थ्य, महंगाई, सांप्रदायिक तनाव-फसाद,

आतंकवाद, अंतरराज्यीय विवाद, जैसे कई मुद्दे कमोबेश

यह आड़ पूरे न हुए वादों पर सवालों से बचने के लिए

स्थिति से बचना चाहेगा. उसे कोई आड़ चाहिए.

संकटग्रस्त मेडिकल शिक्षा

मारे देश में हर साल करीब 50 हजार डॉक्टर मेडिकल कॉलेजों से निकलते हैं. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय डॉक्टरों की अच्छी प्रतिष्ठा है और दुनिया की सबसे बड़ी मेडिकल शिक्षा प्रणालियों में भारत का नाम शामिल है. लेकिन इन उपलब्धियों के बावजूद हमारे मेडिकल कॉलेज गंभीर किमयों से ग्रस्त हैं. डॉक्टरों की एक अहम संस्था एसोसिएशन ऑफ डिप्लोमैट नेशनल बोर्ड के मुताबिक, पिछले 10 सालों में 576 मेडिकल संस्थानों में से 332 ने एक भी शोध पत्र प्रकाशित नहीं किया है. अनुसंधान चिकित्सा अध्ययन और प्रशिक्षण के आधार होते हैं. यदि हमारे आधे से अधिक कॉलेजों में ऐसा नहीं हो रहा है, तो यह डॉक्टर बन रहे छात्रों की क्षमता तथा शिक्षण प्रबंधन पर बड़ा सवालिया निशान है. सरकारी संस्थानों की लचर व्यवस्था पर अक्सर चर्चा होती है, पर यह भी ख्याल रखा जाना चाहिए कि लगभग 60 फीसदी मेडिकल कॉलेज निजी क्षेत्र में हैं. ये संस्थान अपने छात्रों से भारी शुल्क वसूलते हैं. शोध नहीं हो पाना इस लिहाज से भी चिंताजनक है कि हर स्नातकोत्तर छात्र को अंतिम परीक्षा के लिए एक

कई छात्रों के लिए मेडिकल सिर्फ एक करियर है और उनका लक्ष्य डिग्री लेकर पैसा कमाना होता है, न कि रिसर्च करना.

थिसिस लिखनी होती है. तो, क्या यह मान लिया जाये कि ज्यादातर थिसिस प्रकाशित होने लायक नहीं होते हैं और उन्हें सिर्फ परीक्षा पास करने के लिए लिखा जाता है? गंभीर अध्ययनों की इस कमी का नुकसान भारत समेत अन्य देशों को भी हो सकता है. विश्व बैंक के मुताबिक, एक-तिहाई भारतीय डॉक्टर पढ़ाई पूरी करने के बाद प्रशिक्षण या काम करने के लिए विदेश चले जाते हैं. तकरीबन 15 सौ ऐसे डॉक्टर तो अकेले अमेरिका का रुख करते हैं. रिसर्च की

कमी का एक बडा कारण डॉक्टरों पर बडा बोझ है. हर मेडिकल कॉलेज के साथ एक अस्पताल भी होता है. भारतीय चिकित्सा परिषद के आंकड़ों के अनुसार दिसंबर, 2017 में 1,596 लोगों पर एक एलोपैथिक डॉक्टर का अनुपात था. करीब 8.33 लाख डॉक्टर देशभर में कार्यरत हैं. सस्ते और बेहतर इलाज के लिए बड़ी संख्या में लोग मेडिकल कॉलेज के अस्पतालों में जाते हैं. वहां जांच और उपचार का मुख्य जिम्मा कनिष्ठ डॉक्टरों और अंतिम वर्ष के छात्रों का होता है. स्वाभाविक तौर पर उनके लिए शोध पर ध्यान देना मुश्किल होता है. ऊपर से परीक्षा पास करने का दबाव भी होता है. इस माहौल में कॉलेज प्रबंधन भी उन्हें शोध के लिए उत्साहित नहीं करता है. कुछ मेडिकल कॉलेज सरकारी मंजूरी की शर्त पूरी करने के लिए डॉक्टरों को कागजों पर अपने यहां शिक्षक के रूप में दिखा देते हैं. बीते सालों में मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश में धांधली और भ्रष्टाचार के अनेक मामले आते रहे हैं. कई छात्रों के लिए मेडिकल सिर्फ एक करियर है और उनका लक्ष्य डिग्री लेकर पैसा कमाना होता है, न कि रिसर्च करना. सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की बदहाली ने निजी अस्पतालों और डॉक्टरों के लिए अकृत कमाई का रास्ता खोल दिया है. इन समस्याओं के समाधान के बिना कारगर स्वास्थ्य सेवा तंत्र स्थापित करने का सपना पुरा नहीं हो सकता है.



अब वही है

क बार की बात है, एक फकीर एक मंदिर में ठहरा. रात बहुत सर्द थी और भगवान बुद्ध की तीन मूर्तियां थीं लकड़ी की. पुजारी तो सो गये थे. उस फकीर ने एक मूर्ति में आग लगाकर ताप ली. जब आग भभकी तो पुजारी की नींद खुली. पुजारी उस फकीर को समझाने आया कि मंदिर में आग मत जलाओ! लेकिन जब आकर उसने देखा कि बुद्ध जल रहे हैं, तब पुजारी के दिल में भी आग लग गयी. पुजारी ने कहा, अरे पागल! तुमने भगवान को जलाया? उस फकीर ने कहा, भगवान? एक जली हुई लकड़ी उठाकर उसने राख हो गये बुद्ध को कुरेदकर देखा. पुजारी ने पूछा, यह क्या कर रहे हो? फकीर ने कहा, भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं. तब पुजारी ने कहा, निपट पागल! लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं? तब फकीर ने कहा, जब अस्थियां तक नहीं होतीं तो भगवान कहां होंगे! रात बहुत सर्द है, तुम एक मूर्ति और जलाओ तो बड़ी कृपा होगी. तीन मूर्तियां पूरी रात काट देंगी. उस पुजारी ने पूछा, तुझे भय नहीं लगता? तू पागल, भगवान की मूर्ति जला लिया और इतनी मौज से बैठा हुआ है ! तो उस फकीर ने कहा, जब से भगवान को पहचाना, तब से कोई भय न रहा. तब पुजारी ने उसे बाहर किया. उसको ठहराना खतरनाक था, रात में दो मूर्तियां और जला सकता था. रात अभी काफी बाकी थी और सर्द थी. सुबह पुजारी ने देखा, बाहर मील के पत्थर के ऊपर फूल डालकर, हाथ जोड़कर वह फकीर बैठा था. पुजारी ने पूछा, यह क्या कर रहे हैं महाशय! रात तो भगवान की मूर्ति जला दी और अब पत्थर को हाथ जोड़ रहे हैं. तो फकीर ने कहा, मूर्ति जलाने की हिम्मत इसीलिए आ सकी कि अब पत्थर को भी हाथ जोड़ने की हिम्मत आ गयी है. अब हम उतने ही मजे से पत्थर को हाथ जोड़ सकते हैं और जितने मजे से मूर्ति जला सकते हैं. अब कुछ फर्क न रहा. अब वही है. चाहे जलाओ, चाहे पूजो, चाहे जो करो, अब वही है. चलते हैं तो उसी पर, श्वास लेते हैं तो उसी में, सोते हैं उसी पर, खाते हैं उसी को, पीते हैं उसी को, जीते हैं उसी में, मरते हैं उसी में. आचार्य रजनीश ओशो

वे क्यों मर्यादा में नहीं रहते?

नाव-दर-चुनाव हमारी राजनीति का विमर्श नैतिकता और मर्यादा की धज्जियां उड़ाता जा रहा है. सत्रह मई 2019 की शाम लोकसभा चुनाव के अंतिम चरण के मतदान के लिए प्रचार समाप्त होने के साथ ही आशा की जानी चाहिए कि मर्यादा की सीमा लांघकर अब तक के निम्नतम स्तर तक पहुंच गये आरोप-प्रत्यारोपों के सिलसिले पर विराम लग जायेगा.

हमारे नेता अक्सर गर्व से देश को 'दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र' बताते नहीं थकते, लेकिन जिस चुनाव से वह कायम रहता है, क्या उसकी बदहाली पर भी उनकी दुष्टि जाती है? चुनाव आचार संहिता का जैसा बेशर्म उल्लंघन इस बार किया गया और भाषा की मर्यादा ध्वस्त की गयी, क्या उस पर किसी नेता को शर्म आयेगी?

हमारी लोक परंपरा में होली खेलने के दौरान मर्यादा के सीमा-उल्लंघन की कुछ छूट लेने का चलन है, तो रंग-पर्व के समापन के समय माफी मांगने का रिवाज भी कि 'कहे-अनकहे की माफी देना.' क्या हमारे नेता चुनाव बाद ही सही अपनी कहनी-नकहनी पर खेद जताते हुए एक-दूसरे से और जनता से भी क्षमा मांगने का बड़प्पन दिखायेंगे? इसकी आशा करना व्यर्थ होगा, क्योंकि जो न कहने लायक कहा गया, वह इरादतन बोला गया. उनके पास उसकी सफाई तो है, क्षमा-याचना नहीं.

बड़े से बड़े संवैधानिक पदों पर बैठे हुए नेता भी चुनाव में क्यों करते हैं ऐसा आचरण? अपेक्षा तो यह की जाती है कि सत्तारूढ़ दल के नेता अपने कार्यकाल की उपलब्धियों, जनहित की योजनाओं और भविष्य के कार्यक्रमों के आधार पर जनता के पास जायेंगे. वहीं विपक्षी दल सरकार की असफलताओं, अधूरे वादों, भ्रष्टाचार, जनविरोधी कार्यों और देश के सामने उपस्थित चुनौतियों से निपटने के लिए अपने वैकल्पिक कार्यक्रमों, नीतियों, आदि के आधार पर सत्तारूढ़ दल को चुनौती देंगे. स्वाभाविक है कि इस संग्राम में आरोप-प्रत्यारोपों

का सिलसिला भी चलेगा. आशा यही की जाती है कि आरोप-प्रत्यारोप अपने-अपने तथ्यों के आधार पर उपलब्धियों या काम-काज के दावों और उन्हें नकारने तक सीमित रहेंगे. आरोप-प्रत्यारोप कई बार बहुत कटु भी हुए हैं और व्यक्तिगत स्तर तक भी लेकिन शालीनता और नैतिकता की सीमा नहीं टूटा करती थी.

याद कीजिये, 1963 में नेहरू सरकार पर लोहिया के आरोप. लोकसभा की वह लंबी बहस आज और भी प्रासंगिक हो गयी है. वह चुनाव का समय नहीं था. तब भी लोहिया ने तथ्यों, आंकड़ों, अपने अध्ययन एवं अनुभव के बूते नेहरू सरकार की धज्जियां उड़ा दी थीं. उन्होंने कहा था कि 'जब देश की गरीब जनता औसत तीन आने पर गुजारा कर रही है, तब आप पर पचीस हजार रुपये खर्च किया जा रहा है.' नेहरू पर यह आरोप लगानेवाले लोहिया स्वयं बहुत सादगीपूर्ण जीवन जीते थे और गरीबों के लिए जमीनी संघर्ष करते थे.

आज कांग्रेसी या भाजपाई नेताओं

नहीं होती. उलटे. वे हास्यास्पद लगते हैं.

की क्या कहें, लोहिया के नाम पर राजनीति करने वाले भी भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे हैं और ऐश से जीते हैं. इसलिए सरकार में रहते हुए अपने बचाव या विपक्षी नेता के तौर पर सरकार पर हमले करते हुए उनके आरोपों में कोई विश्वसनीयता

नवीन जोशी वरिष्ठ पत्रकार

naveengjoshi@gmail.com

सत्ता में कोई भी पार्टी हो वह कतई नहीं चाहेगी कि असली मुद्दे चुनाव में जनता के सिर चढ़कर बोलें . इसलिए उसकी हरचंद कोशिश होती है कि चुनावी विमर्श में कुछ और ही विषय छा जायें, ताकि असल मुद्दे दबे रहें .

> इसकी चिंता करते हों कि चुनाव जीत जाने पर ये वादे पूरे नहीं किये जा सके, तो जनता उन्हें वादाखिलाफ समझेगी. दरअसल, बड़बोले एवं अव्यावहारिक वादों से जनता की उम्मीदें बहुत बढ़ जाती हैं. चुनाव जीतकर सत्ता में आने

इसी बात से हमें आज की बंद अथवा संकुचित हो जाते हैं.

वर्तमान समय में किसी पार्टी अथवा नेता में यह नैतिक बल नहीं है कि वह, उदाहरण के लिए, यह कह सके कि किसानों की कर्ज-माफी अर्थव्यवस्था के लिए घातक कदम होगा और न ही इससे कृषि और किसानों का दीर्घकालीन लाभ होगा. उलटे, वे कर्ज-माफी का वादा करते हैं. इसी तरह गरीब जनता के खाते में रकम डालने या किसानों की आय बढ़ाने जैसे वादे करने में एक-दूसरे से होड़ लगाते हैं. विभिन्न दलों के चुनाव घोषणा-पत्रों में हम ऐसे कई उदाहरण देख सकते हैं. वे शायद ही

> इसका चेन-रिएक्शन होता है और आचार संहिता ही नहीं, हमारी मर्यादा भी तार-तार होती रहती है.

मर्यादा-विहीन एवं चरित्र-हनन की राजनीति के कारणों का एक सूत्र भी मिलता है. आज की राजनीति जन-सेवा का पर्याय नहीं है. विचार और सिद्धांतों की राजनीति भी कब का विदा हो चुकी. यह येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीतने और सत्ता हथियाने का दौर है. इसके लिए चुनाव में ऐसे वादे भी खूब कर दिये जाते हैं, जिन्हें पूरा करना लगभग असंभव होता है या जिन्हें अमल में लाने पर देश और समाज की तरक्की के रास्ते

> स्थायी समस्या बने रहते हैं. इनमें से चंद कुछेक समस्याएं विकराल हो जाती हैं. ज्वलंत समस्याओं का चुनावों में मुद्दा बनना स्वाभाविक है. सत्ता में कोई भी पार्टी हो वह कतई नहीं चाहेगी कि ऐसे मुद्दे चुनाव में जनता के सिर चढ़कर बोलें. इसलिए उसकी हरचंद कोशिश होती है कि चुनावी विमर्श में कुछ और ही विषय छा जायें, ताकि असल मुद्दे दबे रहें. इसलिए अनर्गल बातें मंचों से सुनायी देने लगती हैं. शुरू में विरोधी दल ज्वलंत मुद्दे उठाने की कोशिश करते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वे भी व्यक्तिगत आरोपों का जवाब अमर्यादित भाषा में देने लगते हैं. वास्तव में विपक्ष के पास भी विश्वसनीय वैकल्पिक योजनाएं नहीं होतीं. तब

> > मीडिया की सुर्खियां बनने लगती हैं.

हम पाते हैं कि बंदर, राक्षस, दुर्योधन-अर्जुन, पिल्ले की

दुम, अली-बजरंगबली, जूते-चप्पल, चट्टी, पप्पू-पप्पी

जैसी अनर्गल टिप्पणियों से लेकर व्यक्तिगत लांछन और

वर्षों पुरानी अप्रासंगिक बातें चुनाव-सभाओं से उठकर

बैलेट के दौर में था बुलेट का जीर



सुशील कुमार मोदी उपमुख्यमंत्री, बिहार

delhi@prabhatkhabar.in

बैलेट के दौर में बिहार जैसे राज्य में बुलेट का जोर था . तब हिंसा, बूथ कैप्चरिंग, बैलेट बॉक्स की लूट, मार–पीट, दबंगई, गरीब–कमजोर वर्ग के लोगों को वोट देने से रोकना, नक्सलियों के कहर आदि की वजह से चुनाव किसी युद्ध से कम नहीं था.

पक्ष को जब-जब चुनाव हारने की आशंका होती है, तो वह ईवीएम पर संदेह करके बैलेट से चुनाव कराने की मांग करने लगता है. ऐसे लोग पुराने दिनों की ओर लौट कर बुझ चुकी चुनावी हिंसा की आग सुलगाने और बूथ लूट के दौर को फिर वापस लाना चाहते हैं. ईवीएम से चुनाव के कारण ही आज गरीब और कमजोर तबके के लोग भी लाईन में लग कर मतदान कर रहे हैं. इससे जहां मतदान का प्रतिशत बढ़ा है, वहीं मतगणना की प्रक्रिया और चुनाव परिणाम की घोषणा भी आसान हुई है. बैलेट से मतदान की मांग करनेवालों को पिछले महीने इंडोनेशिया में हुए चुनाव की जटिलता और

मतगणना के दौरान हाथ से मतपत्रों की गिनती की वजह से थकान के कारण 272 कर्मियों की मौत और ओवरटाइम करने से 1,878 कर्मियों के बीमार पड़ने की परिघटना याद करनी चाहिए नहीं भूलना चाहिए कि बैलेट के दौर में बिहार जैसे राज्य में बुलेट

का जोर था. तब हिंसा, बूथ कैप्चरिंग, बैलेट बॉक्स की लूट, मार-पीट, दबंगई, गरीब-कमजोर वर्ग के लोगों को वोट देने से रोकना, नक्सलियों के कहर आदि की वजह से चुनाव किसी युद्ध से कम नहीं था. देश में सर्वाधिक पुनर्मतदान व चुनावों के रद्द होने का रिकॉर्ड भी तब बिहार के नाम था. प्रशासन दबंगों, बाहुबलियों के आगे लाचार रहता था. हथियारों के बल पर खुलेआम मतदाताओं में दहशत पैदा करने तथा पोलिंग एजेंट को बूथ पैकेट के साथ कारतूस भेजने, अपराधियों व हथियारों का जखीरा जमा करने का खास चलन था.

करीब डेढ़ दशक तक बिहार का चुनाव बूथ लूट और हिंसा का पर्याय रहा है. साल 1990 में हुए विधानसभा के चुनाव में 87 लोग मारे गये. वहीं 1995 में विधानसभा के चुनाव में 54 मौतें हुईं तथा 163 लोग घायल हुए. विधानसभा चुनाव 2000 में कुल 61 व्यक्ति मारे गये. बूथ लूट रोकने व उपद्रवी तत्वों से निबटने के लिए पुलिस ने 39 स्थानों पर गोलियां चलायीं, जिसमें 15 व्यक्ति मारे गये. बिहार सरकार के करीब दो दर्जन मंत्रियों को बुथ पर कब्जा करने के आरोप में थाने पर रोका गया और कई के खिलाफ मामले भी दर्ज किये गये.

बिहार में 2001 में 23 वर्षों बाद छह चरणों में हुए पंचायत चुनाव में 196 लोग मारे गये थे. इनमें 73 लोगों की हत्या की गयी थी. मारे गये लोगों में 40 विभिन्न पदों के प्रत्याशी थे. पंद्रह लोग पुलिस फायरिंग में मारे गये, तो 56 लोग आपसी रंजिश, गुटबंदी व टकराव में मारे गये. तीन बम विस्फोट में मारे गये. तो 46 अन्य घटनाओं में. साल 1990 से लेकर 2004 तक देश में सर्वाधिक पुनर्मतदान और चुनाव रद्द होने का रिकॉर्ड बिहार के नाम रहा. बड़े पैमाने पर बूथ कब्जे की पुष्टि के बाद चुनाव आयोग ने 1991 में पटना और पूर्णिया लोकसभा क्षेत्र का चुनाव रद्द कर दिया था. बिहार में 1990 के विधानसभा चुनाव के दौरान 1,239, 1995 में 1,668 और 2000 में 1,420 मतदान केंद्रों पर बुथ लूट, हिंसा और फर्जी मतदान की वजह से पुनर्मतदान कराये गये थे.

ईवीएम के प्रयोग से बथ लट. फर्जी व बोगस मतदान पर रोक लगी. ईवीएम के जरिये मतगणना का काम तेजी से संपन्न होता है और एक लोकसभा सीट के लिए डाले गये मतों को महज तीन से पांच घंटों में गिना जा सकता है, जबकि बैलेट पेपर के दौर में इसी काम को करने में 40 से 72 घंटों का समय लगता था. बैलेट पेपर से मतदान के बाद एक जटिल प्रक्रिया के तहत सभी मतपत्रों को एक बड़े बक्से में रखकर मिक्सिंग करना, फिर छटाई और बंडल बनाने के बाद उसकी गिनती शुरू होती थी. बैलेट पेपर पर लगी मुहर को लेकर आमतौर पर मतगणना कर्मियों और पार्टियों के कार्यकर्ताओं के बीच तू-तू, मैं-मैं होती थी. बैलेट पेपर को अमान्य करने को लेकर भी अक्सर मतगणना केंद्रों पर झगड़े की स्थिति पैदा होती थी. कई बार असामान्य या पूनर्गणना की स्थिति में तो 4 से 6 दिन भी लग जाते थे.

साल 2005 में बिहार में नयी सरकार बनने के बाद वहां हए चुनावों में कानून के राज का असर देखा गया. दबंगों-बाहुबलियों पर नकेल, चुनाव आयोग और राज्य प्रशासन की सख्ती, ईवीएम का उपयोग, मताधिकार को लेकर मतदाताओं की जागरूकता आदि के कारण चुनावी हिंसा, झड़प, बूथ कैप्चरिंग, लूट-पाट, बोगस वोटिंग, मतदाताओं को धमकाने और मतदान से रोकने जैसी घटनाएं गुजरे दिनों की बात हो गयीं. मुख्य चुनाव आयुक्त टीएन शेषन ने चुनाव की पवित्रता के लिए जो प्रयास 1991 में शुरू किये थे, उसे चुनाव आयोग के सलाहकार केजे राव ने 2005 में पूरी मुस्तैदी से अमल कराया.

आर्म्स एक्ट का सख्ती से अनुपालन, फास्ट ट्रैक कोर्ट, स्पीडी ट्रायल और पुलिसिंग की नयी व्यवस्था अपराधियों के मनोबल को तोड़ने में कारगर रही है. बड़ी संख्या में कोर्ट के फैसलों के द्वारा अपराधियों को जेल में भेजा गया. अपराध की घटनाओं में लगातार गिरावट आयी. इसका असर चुनाव पर भी पड़ा.

इन सबका परिणाम रहा कि चुनावी हिंसा में मरनेवालों की संख्या 2009 में घटकर नौ हो गयी. साल 2014 के लोकसभा चुनाव में हिंसा की घटना में सिर्फ चार तथा 2015 के विधानसभा चुनाव में केवल एक व्यक्ति की मौत हुई. चुनावी हिंसा की घटनाएं जहां लगतार कम होती गयीं, वहीं पुनर्मतदान भी यदा-कदा कराने की नौबत आयी. साल 2019 के लोकसभा चुनाव में अब तक शांतिपूर्ण मतदान की ही खबर है.



नाबालिग का बाइक चलाना

कानूनी अपराध

लगभग हर दिन अखबारों में सड़क दुर्घटना की खबर जरूर होती है. अधिकतर हादसों के शिकार 14 से 22 वर्ष की आयु वर्ग के अपरिपक्व युवा होते हैं. 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक रूप से निर्णय लेने में अपरिपक्व तथा किशोरावस्था के अनियंत्रित जोश में खुद तो हादसों के शिकार होते हैं, दूसरों का भी जीवन खतरे में डाल देते हैं. जब 18 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति का ड्राइविंग लाइसेंस कानूनी रूप से नहीं बनता, तो फिर सड़कों पर 18 वर्ष से कम उम्र के स्कूली एवं कॉलेज के बच्चों के बाइक चलाने की छूट क्यों ? प्रशासन ऐसे लोगों की ड्राइविंग लाइसेंस की नियमित चेकिंग कर जुर्माना करे, बाइक को जब्त करे और माता-पिता और अभिभावकों को

देवेश कुमार 'देव', गिरिडीह

विकसित देश की श्रेणी में जाना भारत के हित में नहीं

जा सकती है.

जागरूक करे, तभी सड़क हादसों में कमी लाई

भारत में अभी-अभी विश्व व्यापार संगठन का दो दिवसीय, मंत्री स्तर की बैठक संपन्न हुई. इसमें 22 देशों के मंत्री दिल्ली में मिले, लेकिन ठोस कुछ निकला नहीं. यह बैठक ऐसे समय हुई, जब बहुपक्षीय नियम-आधारित व्यापार प्रणाली गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है. दोहा दौर की बैठक 19 वर्षों से चल रही है. नतीजा कुछ नहीं निकला. विकसित देश सब नियम कानन अपने फायदे के लिए विश्व पर थोप रहे हैं. अब विश्व व्यापार में 0.5 प्रतिशत की हिस्सेदारी वाले देशों को विकसित देश की श्रेणी में रखे जाने की कवायद जोरों से चल रही है. मतलब भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील आदि विकसित देशों की सूची में शामिल हो जायेंगे. इससे विकासशील देशों की सारी सहूलियतें समाप्त तो होंगी ही, साथ में हमें राष्ट्रसंघ आदि को अंशदान में चार गुना से अधिक का योगदान करना पड़ेगा. इसलिए जैसे गैट समाप्त करके डब्लूटीओ का गठन हुआ था, अब इसकी भी समाप्ति का समय आ गया है.

जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

रोल मॉडल संकट

कुमार संगकारा श्रीलंका के महानतम क्रिकेटरों में से एक हैं. वे सीधे शब्दों में अपने देश के लोगों को तमाम तरह की संकीर्णताओं और नफरत की प्रवृति के खिलाफ आगाह कर रहे हैं. अपने मुल्क की जनता को विभाजनकारी राजनीति से बचने के लिए कह रहे हैं. यह कितना सहज और सटीक संदेश है, मगर हमारे लिए यह बड़ी बात है कि जब यहां के सबसे बड़े सितारे महिला-उत्पीड़न तक पर ढंग का एक जवाब नहीं देना चाहते, प्रधानमंत्री के साथ ग्रुप-सेल्फी लेने वाले अभिनेताओं को नागरिक जीवन के सामान्य से जरूरी सवाल सिलेबस के बाहर के विषय लगते हैं. यह रोल-मॉडल संकट है. संगकारा की तरह कितने 'सुपरस्टार्स' हैं भारत में जो देश-समाज की विकृतियों पर एक सामान्य ट्वीट भी कर सकते हैं.

आलोक रंजन, हजारीबाग

कार्टून कोना

बीसीआईएम आर्थिक गलियारा और भारत

देश दुनिया से

नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में, चीन के युन्नान प्रांत में शैक्षणिक समुदाय ने बांग्लादेश, भारत और म्यांमार के साथ आर्थिक सहयोग का प्रस्ताव रखा था, जिसे तीनों देशों के शिक्षाविदों ने स्वीकार किया था. मई 2013 में, अपनी भारत यात्रा के दौरान चीनी प्रीमियर ली केकियांग ने आधिकारिक तौर पर बांग्लादेश-चीन-भारत-म्यांमार (बीसीआईएम) आर्थिक गलियारा का प्रस्ताव दिया था, जिसमें यह गलियारा युन्नान की राजधानी कुनमिंग से म्यांमार, पूर्वोत्तर भारत, बांग्लादेश

और कोलकाता होकर

गुजरता था. इस आर्थिक गलियारे के पूरा हो जाने के बाद दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और पूर्वी एशिया में विकास को बढ़ावा मिलेगा. म्यांमार और बांग्लादेश ने बीसीआईएम आर्थिक गलियारे का स्वागत किया है. चीन-प्रस्तावित बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव और बीसीआईएम आर्थिक गलियारे के तहत चीन, म्यांमार व बांग्लादेश और भारत व म्यांमार के बीच भी इंटरकनेक्टिविटी, आर्थिक विकास के ढांचे, व्यापार और निवेश सहयोग ने प्रगति हासिल की है. लेकिन भारत ने हमेशा ही बीआरआई और बीसीआईएम को भूराजनीतिक प्रतिस्पर्धा के रूप में देखा है. भारत की इस सोच ने बांग्लादेश और म्यांमार को निराश किया है. लिउ जोंग्यी

राजस्थातः कांग्रेस्सर्कार तेसावरकर को बेकर विद्या पास्थिकम् में बदलाव 🗅 = स्रोतर्कर स्रोतर्कर थाजपाकै हसाबस्या काग्रसके हिसाब से १ साभार : बीबीसी

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : **0651-2544006**, मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो . लिपि रोमन भी हो सकती है

कुछ अलग जुबां ही तो फिसली है, जनाब!

कविवर रहीमदास जी कह गये कि यह जिह्ना बावरी है. ऐसी बावरी कि पल में सरग-पताल कर, भीतर घुस जाये और जूती खानी पड़े कपाल को. पलक झपकते ही भू-मंडल का चक्कर लगा लेनेवाली जीभ का हश्र

तो देखो कि उसे गिरना तो खाई में ही होता है. दो जबड़ों तथा बत्तीस दांतों की अंधेरी गुहा में कैद हो जाती है.

कमबख्त यह जुबान, वहीं कैद ही रहे तो अच्छा. वरना तो जब भी बाहर निकली है, गजब ही ढाया है इसने. वैसे तो यह महज चार-पांच इंची मास का लसलसा-सा टुकड़ा है. मधु, तिक्त तथा कटु को अनुभूत करने और करानेवाली. मधुर रस का पान करे और मधुर रस बरसाये तो रसना. परंतु, कटु तथा तिक्त उवाचे, तो आग लगा देती है.

फिलहाल, सियासी व्यक्तियों की जुबानों से छूटती ज्वालाएं, देश को दावानल बनाने को उतारू हैं. हैरत की बात है कि संजीदा किस्म के लोग भी अपनी जबान की लगाम उतारकर 'टंग की इस जंग' में उतर पड़े हैं. विधि विग्रह ने सटीक टिप्पणी की है- 'जैसी बानी ये बोलत हैं, बोले नहीं गंवार. कैसे देश भक्त ये चालू और लबार.' सुभाष जी ने भी अपनी एक कविता में लिखा है, 'देश प्रेम पारे सा फिसले, पहले नहीं हुआ. नेता हुरियारे सा पहले नहीं हुआ.

दरअसल, जुबान की इस जंग ने हमारे मुल्क को एक अनूठा राष्ट्रीय-रस प्रदान कर दिया है. हम इस रस में डूबकर अपनी बदहाली, भूख, भय और बेरोजगारी को भूल चुके हैं.

प्रभाशंकर उपाध्याय टिप्पणीकार prabhashankarupadhyay@gmail.com

सार्वजनिक मंचों, वार्तालापों तथा टीवी चैनलों की बहसों में जुबानें फिसल रही हैं. ट्वीटर तथा ब्लॉग पर अंगुलियां रपटे जा रही हैं. 'निंदा-रस' का राष्ट्रीय रिकॉर्ड तोड़ डाला है, इस बेहया फिसलन ने. लिहाजा,

फिसलन की स्पर्धा सी चल निकली है. आजकल के फिसलन भरे इस माहौल को देखकर बरबस याद हो आता है बॉलीवुड का यह गीत- 'आज रपट जायें तो हमें न उठइयो... हमें जो उठइयो तो खुद भी फिसल जइयो...'

हैरत तो इस बात पर भी हुई कि जुबान पर लगाम लगानेवाले आयोग की जुबान ही तालू से चिपक गयी. शुक्र है शीर्ष अदालत का, जिसने आयोग का 'तालू-भंजन' कर दिया. वरना तो लोग अली और बली के पीछे ही हाथ धोकर पड़ गये थे. अली और बली तक पहुंचनेवालों ने पहले कैटल, कुत्ता, घोड़ा, बिच्छू और फिर मच्छर तक को पकड़ा था. कुछ वर्ष पूर्व एक नेताजी ने तो स्वयं को डेंगू के मच्छर से भी अधिक खतरनाक बता दिया था. एक पार्टी के महासचिव ने एक स्वामीजी को माफिया डॉन तक कह दिया था, तो दूसरे दल के महासचिव ने उनकी तुलना फिल्मी दुनिया की ऑइटम गर्ल से कर डाली थी.

काश! जुबान के ये जंगबाज श्रीप्रकाश शुक्ल की ये पंक्तियां ही पढ़ लेते- 'जीभ महज स्वाद ही नहीं मित्रो, बछड़ों को चाटती हुई मां है.' और वह ऐसी मां है, जो चाटते हुए जख्म भी भर देती है.